अध्याय 15

अ. अवनद्ध वाद्यों का संक्षिप्त इतिहास
ब. तबले के प्रमुख बाज

अ. अवनद्ध वाद्यों का संक्षिप्त इतिहास
राजस्थानी लोक अवनद्ध वाद्यों के विशेष संदर्भ में

उर्दू शब्द कोष के अनुसार'वाद्य' को उर्दू में साज करते है। प्राचीन संगीत ग्रंथों में वाद्यों की व्युत्पति का वर्णन किसी न किसी देवी देवताओं के सम्बंध से प्राप्त होता है। विभिन्न पदार्थों से ध्वनि उत्पादन और वाद्यों के कई भेद किये गये है। नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय में चार प्रकार के प्रसिद्ध वाद्य है।

(1) तत्   (2) अवनद्ध या आवद्ध   (3) धन   (4) सुषिर

(1) तत् : तत् वाद्य धातु के तार या ताँत से युक्त होते है जिनके तारों पर नख, नखी, मिज़राव या गज के घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होती है जैसे–एकतंत्री, विपंची, बीन, रबाब, सारंगी, सितार, सरोद, इसराज आदि।

(2) सुषिर वाद्य : सुषिर वाद्य छेदों वाले वाद्य है जिन्हें फूँककर या अन्य किसी भाँति वायु के दबाव से ध्वनि उत्पन्न करके बजाया जाता है जैसे–बंशी, अलगोजा, बाँसुरी, शहनाई, हारमोनियम।

(3) अवनद्ध वाद्य : इस श्रेणी के वाद्यों के मुँह खाल या झिल्ली से मढ़े हुये होते है जिस पर हाथ या डंडी के प्रहार से ध्वनि उत्पन्न करते हुए बजाया जाता है जैसे मृदंग, पखावज, तबला, ढोलक, नगाड़ा, खंजरी, नाल, डफ आदि।

(4) धन वाद्य : ये वाद्य किसी धातु के ठोस टुकड़ों से बने होते है जिन्हें परस्पर टकराकर या अन्य किसी ठोस पदार्थ से प्रहार करके या हिला–डुला कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है जैसे झॉझ, मंजीरा, करताल आदि।

तत् वाद्य

अवनद्ध वाद्य

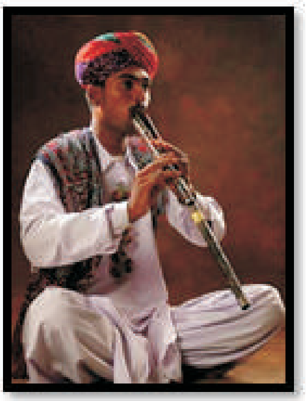

सुषिर वाद्य

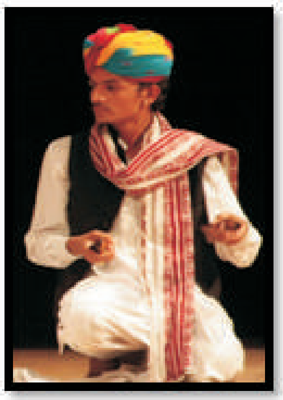

धन वाद्य

अवनद्ध वाद्य : भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। हमारे संगीत में मृदंग प्राचीन ताल वाद्य है। ऐसी धारणा आजतक संगीत जगत में चली आ रही है। कहा जाता है कि मृदंग की उत्पत्ति शंकर के डमरू से हुई है। सृष्टि के प्रलय काल में ताडण्व नृत्य करते समय जब नटराज ने अपना डमरू बजाया तो उसी समय ब्रह्मा जी ने डमरू के आधार पर मिट्टी से

मृदंग की रचना की और सर्वप्रथम उसे गणपति जी ने बजाया। अनेक संगीत ग्रन्थों में ये प्रसंग मिलता है कि गणेश जी मृदंग बजाने में अत्यन्त कुशल वादक थे और नृत्य में गणेश परन होना भी इसी तथ्य को बल देता है। दूसरी कथा यह है कि देवासुर संग्राम के समय वृत्रासुर नामक असुर को मारकर ब्रह्मा जी ने उसी खेत से मिट्टी छानकर मृदंग की रचना की और उसी खाल से उसे माण्ड दिया।

अवनद्ध वाद्यों के ऐतिहासिक क्रमिक विकास पर विचार किया जाये तो कुछ मौलिक तत्त्व हमारे सामने आते है, अवनद्ध वाद्यों को प्राचीनतम के आधार पर चार भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) पूर्व वैदिक (2) हिन्दू काल (3) मुसलमान काल (4) आधुनिक काल (अंग्रेजों का वर्तमान काल)

भारतीय इतिहास के आधार पर हम कह सकते है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता ईसा सदी से कई हजार वर्ष पुरानी है। मोहन जोदड़ों की खुदाई से भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि उस समय भी हमारे यहाँ मिट्टी और पत्थर के वाद्य प्रयोग में आते थे। खुदाई से प्राप्त नृत्य संबंधित मूर्तियां इसी तथ्य को प्रमाणित करती है। मिट्टी के पात्र जो अन्य आवश्यकताओं के लिए बनाये जाते थे, आनंद और उल्लास के समय वहीं वाद्य यन्त्रों का काम देने लगते थे। आज की जंगली जाति के या पहाड़ी क्षेत्रों के ग्रामीणों की संगीत गोष्ठियों में मिट्टी क्षेत्र के घड़े, चिमटे और कटोरियाँ आदि पात्र ताल वाद्यों के रूप में प्रयोग किये जाते थे।

अतः इस काल में तत् वाद्य बहुत कम मिलते थे। यदि होते भी थे तो वह मिट्टी और पत्थर के थे। ताल वाद्यों की परम्परा को समझने के लिए निम्न आधार हो सकते हैं–

1. वैदिक साहित्य
2. रामायण और महाभारत
3. जैन और बोद्ध धर्म की पुस्तके
4. प्राचीन शिलालेख
5. स्तूप या अन्य वस्तु कला संबंधी सामग्री प्राचीन मूर्तियाँ आदि
6. मंदिर या राज दरबारों में सभी की रीति
7. आधुनिक इतिहास की पुस्तकें
8. संगीतकारों में प्रचलित किवदन्तियाँ।

वैदिक काल में अनेक वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता था जैसे आडम्बर दुन्दुभि तथा अघाती इसका प्रयोग किसी मंगल कार्य में अथवा युद्ध के विजय अवसर पर या समूह नृत्य गायन आदि में होता था।

हंसोपनिषद में वाद्यों के भेदों के प्रसंग में मृदंग वाद्य का उल्लेख है। जिनके आधार पर हम यह कह सकते है कि पुराणों से पूर्व ही अर्थात् ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व मृदंग वाद्य बन चुका था। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मृदंग की उत्पत्ति का संबंध भूमि दुन्दुभि से है। भूमि के स्थान पर मिट्टी से मृदंग के शरीर की रचना करके उसे चमड़े से मढ़ दिया गया इस वाद्य को सुविधा पूर्वक कहीं भी ले जाया जा सकता है। अतः इस आधार पर यह धारण है कि वैदिक कालीन भूमि दुन्दुभि से ही मृदंग की रचना हुई है।

रावण के अन्तःपुर में संगीत की सामग्रियों का वर्णन करते हुए वाल्मिकी ने अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत मृदंग वरद, हडम डिम डिम आदि वाद्यों का वर्णन किया है।

पाणिनी की अष्टाध्यायी से पूर्व शताब्दी में भी कुछ वाद्यों का वर्णन है जिसमें पुर–पुर प्रावण आदि प्रमुख है। बौद्ध कालीन साहित्य में तत् वितत् धन और सुषिर वाद्यों का उल्लेख अनेक बार हुआ है। जैन ग्रन्थों में प्रणवपरह, मुरण मृदंग, भेरी, दुन्दुभि आदि ताल वाद्यों का उल्लेख है। चर्म वाद्यों के अन्तर्गत मुकुन्द तातिया आदि का वर्णन है।

पुराणों में हरिवंश पुराण, ताल पुराण, मार्कण्डेय पुराण में संगीत विषयक सामग्री प्राप्त होती है इस काल में दुरदुर, प्रणव, पुष्कर, पनह, आनह आदि का प्रचार था। नाट्य शास्त्र में अवनद्ध वाद्यों का प्रमुख स्थान है। मृदंग, प्रणव दर्दुर आदि वाद्यों की ध्वनि एक साथ की जाती थी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से अवनद्ध वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। दुंदुभी, आदम्बर, मेरी, डिमडिम, मृदंग का वर्णन वेदों में भी प्राप्त है इन्हीं ताल वाद्यों का एक परिवर्तित व परिवर्धित रूप तबला है। कुछ प्रमुख अवनद्ध वाद्य

इस प्रकार है–मृदंग, डमरू, घटम्,झल्लरी, तुम्बकी, पखावज, तबला, ढोलक खंजरी, ढोल, नगाड़ा आदि।

राजस्थान के लोक अवनद्ध वाद्य

लोक कला की समस्त विधाओं में लोकनृत्यों, लोकनाट्यों, लोक वाद्यों, लोक संगीत इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है, युग युगान्तर से पनपी ये कलाऐं राजस्थान की संस्कृति का प्राण बनी हुई है परन्तु बिना वाद्य यंत्रों के राजस्थानी लोक संगीत अधूरा है।

प्राचीन काल से ही वाद्य यंत्रों का संबंध देवी देवताओं के साथ स्थापित किया जाता रहा है। राजस्थान के लोक संगीत में अलगोजा, इकतारा, कामायवा, खड़ताल, चंग, जंतर, झांझ, ढोल, तदूंरा, पूंगी, भपंग, मंजीरा, रावणहत्था, शहनाई, सारंगी आदि लोक वाद्य सुदीर्घ काल से अपनी लहरियों से प्रसिद्ध है। कुछ प्रमुख अवनद्ध वाद्य निम्न है–

1. **डमरू :** श्री कृष्ण की बंशी, सरस्वती की वीणा, तथा शंकर के डमरू को हिन्दू धर्मग्रन्थों में आध्यात्मिक महत्व प्रदान किया गया है। कहते हैं ताण्डव नृत्य के समय शिवजी डमरू बजाते हैं। सूर ने अपने पदों में शिव के रूप में बाल कृष्ण का वर्णन करते हुये तथा शंकर के आगमन की सूचना देते हुये डमरू का उल्लेख किया है।एक दो बालिश्त तक लम्बा डमरू दोनों सिरों पर चमड़े से मढा होता है। इसके दोनों मुख रस्सी से कसे रहते हैं, इसके बीच का हिस्सा एक दम पतला होता है जिसमें एक रस्सी अलग से लटकी रहती है और रस्सी के मुख पर घुण्डी बनी होती है। हाथ को इधर उधर घुमाने से घुण्डीदार रस्सी डमरू के दोनों मुखों पर चोट करती है तो डिम डिम की ध्वनि निकलती है।

   वर्तमान में शिव मन्दिरों में इस सामान्य आकार से लगभग तिगुना, चौगुना बडा डमरू होता है जो आरती के समय दोनों हाथों से मध्य स्थान पर पकड कर बजाया जाता है। राजस्थान में डमरू का विशेष प्रयोग बन्दर, भालु आदि का नाच दिखाने के लिए भी किया जाता है।

2. **डिमडिमी :** डिमडिमी से बच्चों को खेलने वाला डमरू कहना चाहिए। वस्तुतः डिमडिमी डमरू से छोटे आकार की होती है। इसका ढांचा मिट्टी का होता है। जिसके दोनों मुखों पर पतली झिल्ली मढी रहती है। झिल्ली को किसी डोरे से न नहीं कस कर सरेस आदि से चिपका देते हैं। डोरे की गाठें झिल्ली से टकरा कर ध्वनि उत्पन्न करती है।

3. **ढोलक :** ढोलक आम, बीजा, शीशम सामौन, नीम, जामुन की लकड़ी से बनती है। इच्छानुसार आकार बनाने के लिए लकडी को अन्दर से पोला कर दिया जाता है। इसके दोनों मुख पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है। यह खाल डोरियों द्वारा कसी जाती है। डोरियों में छल्ले रहते हैं जो खाल और डोरियों को कसते हैं। ढोलक का दाहिना मुख ऊंचे स्वर में तथा बाँया मुख मन्द स्वर में बोलता है। ढोलक का बाँया मुख मोटी खाल से मढ़ा जाता है तथा इस खाल में भीतर से एक विशेष प्रकार का लेप किया जाता है।

   ढोलक दोनों हाथों से बजाया जाता है, लोक गीतों, लोक नृत्यों के साथ ही, मांगलिक पर्वों पर स्त्रियाँ ढोलक की ताल पर गीत गाती हैं।

4. **डफ :** डफ का प्रयोग भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न रूपों में होता है। किन्तु राजस्थान तथा ब्रज आदि में डफ होली का प्रतीक माना जाता है। डफ की ध्वनि सुनाई देते ही फाग की याद आने लगती है। डफ बजाते हुये रात–रात भर फाग गाये जाते हैं।

   चार अंगुल चौडे लकडी के घेरे पर चमड़े से मढ़ा हुआ यह चक्राकार वाद्य 16 से 20 अंगुल

व्यास तक होता है। इसे बांए हाथ से पकडकर हृदय के समीप स्थित कर दाहिने हाथ की थाप द्वारा बजाते हैं। इसके छोटे स्वरू‌प को डफली या डपली कहते हैं। वास्तव में डफ, ढफ, डफला चंग आदि एक ही जाति के वाद्य है जो अपने सामान्य रूप तथा वादन विधि के अन्तर सहित देश के सभी भागों में प्रचलित है। कहरवा, तथा दादरा ताल के विभिन्न रूपों का इन में बडा आकर्षक वादन होता है। मध्यकालीन कवियों ने इस का होली की धमाल के साथ प्रचुर वर्णन किया है।

5. **चंग :** लोक गीत के स्तर का ख्याल गाने वालों का यह प्रसिद्व वाद्य चक्राकार स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। इसका व्यास 18 से 22 अंगुल तक का होता है। घेरा चार अंगुल चौड़ी लकड़ी से बनाया जाता है। जिस में एक ओर खाल मढी होती है। खंजरी से इसका घेरा दुगने से तिगुना बडा होता है फलतः इस में मढी हुई खाल चाहे जितनी भी कसी हो कुछ समय बाद ढीली पडने लगती है। इस कारण आजकल इसका घेरा पीतल का बनने लगा है। जिसमें खाल को कसने के लिए चाबियाँ लगी रहती है।

डफली तथा चंग के बजाने की विधि और बोलों में कई भेद देखे जाते हैं। कुछ लोग छल्ला पहन कर घेरे पर प्रहार करते हैं, कुछ लोग बांस की खपच्ची से चमड़े पर प्रहार करते हैं, कुछ दाहिने हाथ से वादन करते हैं।

6. **ढोल :** एक बडे बेलन के आकार का वाद्य, जिसे लोहे की सीधी और चपटी परतों को आपस में जोड कर बजाया जाता है। इन परतों को जोडने के लिए लोहे और तांबे की कीलें बारी–बारी से प्रयोग की जाती है। इस वाद्य पर बकरे की खाल मढी जाती है। वाद्य को कसने मढने के लिए कुण्डल अथवा नजरे का प्रयोग किया जाता है। इसे कसने के लिए डोरी का प्रयोग किया जाता है जिस में पीतल के छल्ले पडे होते हैं।

इसका नर भाग डण्डी के द्वारा तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है इसमें विभिन्न लयकारियां दिखाई जाती है, इस पर कुछ विशिष्ट वस्तुएं विशिष्ट नाम से बजायी जाती है जैसे– चिरामी, गजरा, घूमर, सती और कटक आदि। ढोल मुख्य रूप से त्यौहारों के अवसर पर बयाजा जाता है। यह नृत्य मण्डलियों में भी संगति करने के प्रयोग में लाया जाता है। इसके साथ थाली बजायी जाती है। कभी–कभी ऊंचे स्वर में दो पतली डण्डियों से दूसरा व्यक्ति ताशा नामक वाद्य बजाता है। ढोल लगभग 30 इंच लम्बा तथा इस का मुख 18 इंच से 24 इंच तक का होता है।

7. **नगाडा :** इस वाद्य का आकार दो कटोरों के समान होता है जिन में एक छोटा तथा दूसरा बडा होता है। बडा कटोरा ताँबे का तथा छोटा लोहे का बना होता है। बडे कटोरे पर भैंस की तथा छोटे पर ऊँट की खाल मढी जाती है। यह खाल चमडे की बद्वियों की सहायता से कसी जाती है।

यह एक व्यक्ति के द्वारा दो डंडियों से बजाया जाता है। बडा नगाडा नीचे स्वर में तथा छोटा नगाडा बहुत ऊँचे स्वर में मिलाया जाता है। इसके स्वर की ऊँचाई के लिए प्रायः इसे आग में सेकते हैं। बड़े नगाडे की सतह मे एक छेद होता है जिस से पानी डाल कर ऊपर मढ़ी खाल तक पहुँचाया जाता है। जिस के कारण इस का स्वर नीचा हो जाता है।

कहरवा, दादरा के अतिरिक्त विभिन्न कठिन तालें तथा लयकारियां भी इस वाद्य पर बजायी जाती है। राजस्थान के शेखावटी तथा अलवर क्षेत्र में नगाडा वादन की प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती है। नगाडा युद्वके वाद्यों के साथ बहुत प्रयोग किया जाता है, किन्तु आजकल राजस्थान के उत्सवों में इस का प्रचार अधिक है। नृत्य मण्डलियों में इस का प्रयोग संगति के लिए भी होता है।

8. **तासा :** तासा चपटे कटोरों से बनता है, जो लोहे अथवा मिटटी के बने होते हैं। इस पर बकरे की खाल मढ़ी जाती है जो चमड़े की पटिटयों से कसी रहती है। यह गले से लटका कर दो पतली लकडियों से बजाया जाता है। मुख्य रूप से यह संगति के प्रयोग में आता है इसके साथ ढोल और झांझ बजाये जाते हैं।

9. **डेरू या ढाक :** यह डमरू के आकार का वाद्य है। इसके दोनों ओर चमडा मढ़ा रहता है इसके घेरे पर डोरी को इस प्रकार बांधा जाता है, जिससे मढी हुई खाल को इच्छानुसार कसा जा सके। यह एक पतली और मुडी हुई डंडी से बजाया जाता है। इस पर एक हाथ से आघात किया जाता है और दूसरे हाथ से डोरी को दबा कर खाल को कसा या ढीला किया जाता है।

राजस्थान में यह सपेरों द्वारा और दूसरे घूमने वाले समुदायों द्वारा बजाया जाता है। इसमे खेमटा ताल के भिन्न–भिन्न प्रकार बडी कुशलता से बजाये जाते हैं।

10. **खंजरी :** यह लकडी का छोटा, मोटा लगभग 6 इंच के वृत्त का घेरा होता है। जिसके एक ओर खाल मढ़ी रहती है। इस के लिए बकरी की खाल प्रयोग में लाते हैं। इसे केवल एक हाथ से बजाते हैं। कभी कभी इस के घेरे में पीतल की छोटी झांझे भी लगायी जाती है।

यह राजस्थान में कालबेलियों और जोगियों की मण्डली द्वारा बजाया जाता है।

11. **मादल :** यह एक जातीय वाद्य है। जो भील और गरासिया जाति द्वारा बजाया जाता है। इसका ढांचा मिट्‌टी के बेलन के आकार का होता है जो कुम्हार द्वारा बनाया जाता है। इस पर हिरण या बकरे की खाल मढी जाती है। इसकी खाल सीधी डोरियों द्वारा कसी जाती है। मादल में छल्ले नहीं लगाये जाते हैं। स्वर को ऊँचा और नीचा करने के लिए इसके दोनों मुखों पर आटा लगाया जाता है।

12. **कुण्डी :** यह मिटटी का बना हुआ छोटा बरतन है इस पर बकरे की खाल मढी रहती है जो चमडे की बद्वियों से कसी रहती है। इसे दो छोटी डंडियों से बजाया जाता है। मेवाड़ क्षेत्र के जोगियों में इस वाद्य का अत्यधिक प्रचार है। जोगियों के पंचपद नृत्य में इसका प्रयोग होता है।

13. **कमट :** कमट नगाडा जाति का वाद्य है जो लोहे की परत से बनतो है। इस पर भैंस की खाल मढ़ी जाती है। खाल चमडे की पटिटयों की सहायता से खींची जाती है। चार या पांच अथवा इस से भी अधिक व्यक्ति इस के चारों ओर खडे होकर तथा हाथ में दो दो डंडियां लेकर इस को लय के साथ बजाते हैं। मुख्य रूप से यह राजस्थान के अलवर क्षेत्र में पाया जाता है।

14. **पाबू जी के माटे :** यह वाद्य मिट्‌टी के दो बरतनों से बनता है। इन बरतनों के मुख पर खाल मढी रहती है। यह खाल चमडे की लटरदार बद्वियों में छोटी लकडियों के टुकडे डाल कर कसी जाती है। इन दोनों वाद्यों को अलग–अलग दो

ब. तबले के प्रमुख बाज

बाज का तात्पर्य वादन शैली से है जितनी वादन शैलियां होती है, उतने बाज होते है। बाज से घरानों की रचना हुई है। प्राप्त जानकारी के अनुसार दिल्ली के उ. सिधार खाँ प्रथम तबला वादक थे, उनके बजाने की शैली ने एक बाज का निर्माण किया जो दिल्ली बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिधार खाँ के शिल्पों में से कुछ उसी स्थान पर रहे तथा कुछ भारत के अन्य भागों में फैले। ये लोग अपने साथ–साथ तबला बजाने की कला भी लेते गये, जिसका प्रचार विभिन्न स्थानों पर किया। धीरे–धीरे उस स्थान का प्रभाव पड़ा और कुछ समय बाद उनकी वादन शैली अथवा बाज दिल्ली बाज से अलग हो गई इस प्रकार तबले के विभिन्न बाजों का जन्म हुआ। तबले के मुख्य बाज है पूर्व और पश्चिमी।

(1) फर्रूखाबाद बाज :

"विविध साजों के बोलों से तबले का विस्तार तो होता है, किन्तु इससे उसकी शुद्धता भी खत्म हो जाती है। इस दृष्टि से फर्रूखाबाद घराने का तबला शुद्ध तबला है, क्योंकि इसमें ताशा, नक्कारा, ढोल और खंजरी आदि के बोल नहीं प्रयुक्त होते है।

फर्रूखाबाद घराने के प्रवर्त्तक हाजी विलायत अली लखनऊ के उस्ताद बख्शू खाँ के शिष्य और दामाद थे और इन्होनें ही इस घराने की नींव रखी। वर्तमान काल के संगीत जगत में हाजी साहब की गतों का बड़ा ऊँचा स्थान है और इनकी पत्नी जो बख्शूँ खाँ साहब की पुत्री थी, उसकी भी गतें हाजी जी की गतों के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी कहावत है कि उन्होनें प्रार्थना में यही मांगा कि मुझे तबला बजाना आ जाए और हर बार उन्हें नई गत मिली।

उ.अमीर हुसैन

खाँउ.करामतुल्लाह खाँ

पं.ज्ञान प्रकाश घोष

पं. विक्रम घोष

इस घराने की के प्रणेता हाजी विलायत अली ने चाँटी और लव के मिश्रण से फर्रूखाबाद घराने की स्थापना की थी। इस घराने का वास्तविक विकास लखनऊ, रामपुर, कोलकता में हुआ, परन्तु हाजी विलायत अली मूलतः फर्रूखाबाद के निवासी थे अतः इस घराने और बाज का नामकरण फर्रूखाबाद के नाम पर ही हुआ। फर्रूखाबाद घराना हाजी साहब की गतों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उस्ताद अमीर हुसैन खाँ के शब्दों में–जिस महफिल में हाजी साहब की एक भी गत बज जाती है उसमें रौनक आ जाती है।

हाजी विलायत अली के चारों पुत्रों और शिष्यों द्वारा इस परम्परा का काफी प्रचार–प्रसार हुआ। इनके ज्येष्ठ पुत्र उस्ताद निसार अली वर्षों तक रामपुर, दरबार में रहे। इनके शिष्यों में मुनीर खाँ ने विशेष ख्याति अर्जित की। हाजी साहब के दूसरे पुत्र उ. अमान अली भी योग्य ताबलिक थे। उनकी परम्परा में जयपुर घराने के प्रसिद्ध कथक नर्त्तक पं. जयलाल व उनके पौत्र पं. राम गोपाल के पुत्र राजकुमार मिश्र ने तबला व पखावज के कलाकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की।

हाजी साहब के तीसरे पुत्र हुसैन अली भी तबला के विद्वान थे। इन्होनें अपने पिता और बड़े भाई निसार अली से तबले की शिक्षा प्राप्त की। इनकी शिष्य परम्परा में मुनीर खाँ, अमीर हुसैन खाँ, अहमदजान थिरकवा, नासिर खाँ, निखिल ज्योति घोष जैसे प्रसिद्ध कलाकार हुए। इन कलाकारों के अलावा हाजी साहब के शिष्यों में इमाम बख्श, मुबारक अली, सलारी मियां विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तमें इस घराने की जो विशेषताऐं है उनके जन्मदाता सलारी मियाँ ही थे।

फर्रूखाबाद घराने की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें दिल्ली के किनार और लखनऊ के लव का सूझबूझ युक्त मणिकांचन प्रयोग होता है। इस बाज में दिल्ली की मिठास और लखनऊ की गंभीरता दोनों पाई जाती है। इस बाज में रेलों का विस्तार रौ के रूप में हुआ है। धिरकिट, तिरकिट, दिगनग, दिनतक, दींग, दींगड, क्डान, ध्डान, त्रक जैसे वर्णों का प्रयोग इस परम्परा के कलाकार खुल कर करते है और इन्हीं वर्णों का प्रयोग इस घराने का मौलिक आधार और मौलिक विशेषता है।

इस घराने के प्रसिद्ध कलाकार उ. नन्हें खाँ, उ. करामतुल्लाह खाँ, पं. ज्ञान प्रकाश घोष, उस्ताद हुसैन बख्श, पं. विक्रम घोष, शेख, दाऊद, स्व. पं. प्रेम वल्लभ आदि कलाकार है।

(2) बनारस घराना और बाज :

भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस शुरू से ही संगीत और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। यद्यपि यहाँ के तबले का इतिहास सन् 1797 में जन्में पं. रामसहाय मिश्र के काल से ही आरम्भ होता है अपने पिता पं. प्रकाश मिश्र व चाचा से तबला वादन की शिक्षा के पश्चात् उ. मोदू खाँ जो समस्त विद्वता के बावजूद तबलें में तैयारी न होने के कारण मुस्लिम संगीत समाज में 'परकटे कबूतर' के नाम से उपहास के पात्र बने हुये थे से बालक रामसहाय ने सन् 1807 से 10 वर्ष की उम्र से ही मोदू खाँ से तबला सीखना आरंभ किया, यह क्रम 12 वर्षों तक चला इसी समय उनकी पत्नी ने 500 पंजाबी गतें पं. रामसहाय को सिखायी थी। 1819 में गाजीउद्धीन हैदर की ताजपोशी के जलसे में 7 दिनों के भव्य समारोह में सिर्फ पं. रामसहाय का तबला वादन हुआ एवं सभी घराने के कलाकारों ने आपको सर्वश्रेष्ठ व अद्वितीय ताबलिक स्वीकार कर उनकी भुजा पूजी।

पं.अनोखेलाल पं.कंठे महाराज पं.किशन महाराज

पं. रामसहाय के अद्भुत तबला वादन से प्रभावित, सम्मोहित एवं चमत्कृत यूं तो लगभग पूरा बनारस ही उनसे सीखने को इच्छुक था, किन्तु उनके 5 कालजयी शिष्यों के नाम इस प्रकार है– मस्तराम, पं. रामशरण जी मिश्र, पं. प्रताप महाराज, पं. बैजूजी, पं. भगत जी और पं. यदुनंदन जी इन शिष्यों के अलावा पं. जानकी सहाय जो इनके अनुज थे, उन्होनें भी तबला वादन की शिक्षा इनसे प्राप्त की। जानकी सहाय की शिष्य परंपरा में परतप्पू जी का नाम उल्लेखनीय है और इन्हीं शिष्य परम्परा में हरिसुंदर मिश्र (वाचा मिश्र) सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज, पं. विक्रमादित्य मिश्र, कुमार लाल मिश्र, पं. ननकू महाराज आदि विख्यात तबला वादक हुये।

बनारस बाज का सृजन करते हुए इसके सर्जक पं. रामसहाय ने घोषणा की थी कि ''इस शैली का वादन करने वाला कलाकार गायन, तंत्र, सुषिर वाद्य तथा नृत्य की कुशल संगति करने के साथ–साथ स्वतंत्र तबला वादन में भी निपुण होगा। यहाँ यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बनारस बाज के निर्माण के पीछे लखनऊ, पंजाब और बनारस इन तीनों वादन शैलियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, यही कारण रहा कि पं. रामसहाय के पास लगभग सभी घरानों की अनुपम बंदिशों का अनूठा संग्रह था।

लखनऊ बाज में चाँटी के साथ लव और स्याही का जो आंशिक प्रयोग ता ना और धा जैसे वर्णों के निकास के लिए होता था, उसे यथावत रखते हुये पं. रामसहाय ने स्याही पर भी था और ता जैसे वर्णों का वादन आरंभ किया। बोलों के निकास, वादन शैली में परिवर्तन करके पं. रामसहाय ने तबले पर लगने वाली स्याही के महत्त्व को रेखांकित किया। परिणामस्वरूप बनारस का तबला शेष घरानों की

अपेक्षा अधिक खुला व जोरदार हो गया।स्तुति परणों का वादन बनारस बाज की एक उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण विशेषता मानी गयी। विभिन्न देवी देवताओं के चारित्रिक गुणों विशेषताओं का वर्णन तबला पखावज के बोलो के साथ गुंथा होता है।

लोक संस्कृति के संदर्भ में ठुमरी, दादरा, होली, कजरी जैसी विधाओं की संगति हेतु बनारस के ताबलिकों ने दादरा, कहरवा, जत, दीपचंदी, अद्धा, पंजाबी जैसे लोक व सुगम संगीत की तालों को भी गंभीरता से अपनाया, गत के जवाब में फ़र्द का आविष्कार किया। जहां अन्य घरानों का तबला उठान से। बनारस के कलाकार पेशकार की तरह का भी एक बजाते है जिसे ठेके का बाँट या विस्तार कहते है। बनारस के कलाकार चांटी, लव और स्याही सहित पूरे तबले का प्रयोग करते है। इसमें खुलापना, जोरदारी और गम्भीरता है तो माधुर्य भी, दाहिने–बाँये का प्यार–मनुहार है तो घात प्रतिघात भी। संचार माध्यमों की आधुनिक क्रांति ने आज बनारस बाज की विशेषताओं को बनारस तक ही सीमित नहीं रहने दिया है जो कि एक शुभ संकेत है।

(3) अजराडा बाज :

उ. हबीबुद्दीन खां

दिल्ली के पास ही उत्तरप्रदेश में एक स्थान है मेरठ। मेरठ जनपद के अजराड़ा नामक ग्राम से कल्लू खाँ और मीरू खाँ नामक दिल्ली जाकर सिताब खाँ से तबला सीखा। चटक, टनक और तैयारी ने शुरू में तो लोगों को आकर्षित किया, परन्तु 60–70 वर्ष बीत जाने के बाद लोगों ने एक रसता महसूस की, यहीं दोनों भाईयों के मन में प्रश्न कौंधा कि जब तबले के साथ बाँया बजता है, भराव पैदा करता है, सहारा देता है तो बाएँ का अपना कोई अस्तिव, महत्व क्यों नहीं है। तत्पश्चात् दोनों भाई बाएं को विकसित करने प्राण प्रण से जुट गये और पूरा तबला दिल्ली का होते हुए भी तबला के आकाश में अजराड़ा एक अलग बाज..........वादन शैली के रूप में चमका.......... घराने के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

अजराड़ा के कलाकार धातेटे या धतेटे जैसे बोलों की जगह धेतक बोल का बड़ा ही आकर्षक प्रयोग करते है। बायां को और अधिक उभारने के लिए मींड युक्त बाँया का प्रयोग भी यहाँ होता है एवं अन्य घरानों के 'ग' की जगह अजराड़ा ने 'घ' के प्रयोग पर बल दिया।

अजराड़ा घराने की नींव सन् 1780 के आसपास हुई। इस परम्परा के श्रेष्ठ कलाकारों में–मोहम्मदी बख्श, चाँद खाँ, काले खाँ, कुतुब बख्श, तुल्लन खाँ, घीसा खाँ, रमजान खाँ, गुलाम साबिर, एस.आर.चिश्ती आदि प्रमुख है। उस्ताद शम्भू खाँ इस घराने के श्रेष्ठतम् कलाकार हुये एवं उनके शिष्यों में मंजू खाँ, हजारी लाल कत्थक, सुधीर सक्सेना, अमीर मोहम्मद खाँ आदि ने इस घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया। इन कलाकारों के अलावा पं. अर्जुन पाण्डेय ने अजराड़ा के तबले का बिहार में खूब प्रचार–प्रसार किया।

अजराडा बाज : दिल्ली घराने की मूल विशेषताओं के साथ उस्ताद कल्लू खाँ और भीरू खाँ ने अपनी सृजनात्मक शक्ति का परिचय देते हुए इस वादन शैली को नयी दिशा देने का अथक प्रयास किया। अजराड़ा के कायदों में आड़ी लय को प्रधानता मिली। दाएं तबले के समान ही बांये के बोलों की प्रधानता, बांये का गमक युक्त सुन्दर प्रयोग और दाहिने तथा बाँये का गमक युक्त सुंदर प्रयोग और दाहिने तथा बाँये के लड़गुथाव ने इस वादन शैली को एक नयी रंगत दी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. बाज – बाज का तात्पर्य वादन शैली
2. तत् वाद्य – तार वाद्य
3. सुषिर वाद्य – फूँक वाद्य
4. अवनद्ध वाद्य – खाल या चमड़े से मढे वाद्य
5. धन वाद्य – धातु के ठोस टुकड़ों से बने वाद्य

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अवनद्ध वाद्य है।

   (क) सारंगी (ख) बांसुरी (ग) मंजीरा (घ) डमरू

2. वाद्य कितने प्रकार के होते है।

   (क) चार (ख) पाँच (ग) दो (घ) तीन

3. सबसे प्राचीन वाद्य है।

   (क) मृदंग (ख) हारमोनियम (ग) ढोलक (घ) तबला

4. पं. रामसहाय मिश्र किस घराने से है।

   (क) बनारस (ख) अजराड़ा (ग) दिल्ली (घ) लखनऊ

5. फर्रूखाबाद घराने के प्रवर्तक है।

   (क) पं राजकुमार मिश्र (ख) पं जयलाल (ग) हुसैन अली (घ) हाजी विलायत अली

6. निम्न में से कौनसा वाद्य भिन्न श्रेणी का है।

   (क) नगाडा (ख) ढोल (ग) तानपूरा (घ) चंग

उत्तरमाला– 1 (घ) 2 (क) 3 (क) 4 (क) 5 (घ) 6 (ग)

लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. तबले के बाज का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
2. बनारस घराने की विशेषताऐं बताईये।
3. फर्रूखाबाद घराने के प्रमुख कलाकारों के नाम लिखिये।

विस्तृत प्रश्न–

1. अवनद्ध वाद्यों का इतिहास लिखते हुये राजस्थान के लोक संगीत के अवनद्ध वाद्यों का वर्णन कीजिये।
2. फर्रूखाबाद घराना की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. अजराड़ा घराने का विस्तृत वर्णन कीजिये।

डमरू वादन करते शिव